INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 11 | DECEMBER - 2023

रीवा जिले की कोल जनजाति की संस्कृति का अध्ययन

छत्रपाल सिंह गौर[1] , डॉ. आर.के. शर्मा[2]
[1]शोधार्थी भूगोल, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]प्राचार्य, इन्द्रा स्मृति महाविद्यालय, न्यू रामनगर, सतना (म.प्र.)

सारांश –

रीवा जिले के जनजातियों का सांस्कृतिक जीवन प्रदेश के अन्य जिलों में पायी जाने वाली जनजातियों के रीति–रिवाज, भाषा, धार्मिक विश्वास, संस्कार आदि में काफी समानताएँ पायी गई है। किन्तु कुछ स्थानीय स्तर पर बोली–भाषा, लोग कला, त्योहार रीति–रिवाज में अन्तर व बदलाव भी दृष्टिगोचर है, यहाँ की जनजातियों के संस्कार हिन्दू धर्म के संस्कारों से अलग नहीं हैं। रीवा जिले की अधिकांश अनुसूचित जनजातियों में जन्मोत्सव संस्कार से लेकर अन्तेष्ठि (मृत्यु) संस्कार तक काफी समानताएँ हैं। जनजातीय समाज में परम्परागत संस्कार आज भी दिये जाते हैं, ये लोग अपने परम्परागत संस्कार पर बड़ी आस्था व विश्वास रखते हैं। अपने धर्म के प्रति गहरी आस्था व विश्वास के साथ हिन्दू धर्म के त्योहार, पर्व व उत्सव, जैसे–दीपावली, दशहरा, नागपंचमी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, गणेश पूजा, दुर्गा पूजा, रामनवमी, बसन्त पंचमी, रक्षाबन्धन आदि त्यौहार बड़ी धूम–धाम से मनाते हैं।

मुख्य शब्द – रीवा जिला, जनजातियों के संस्कार एवं सांस्कृतिक जीवन।

प्रस्तावना –

देश एवं प्रदेश की भाँति मध्यप्रदेश के रीवा जिले की मूल निवासी कोल जनजाति के आर्थिक स्तर, समाजिक जीवन कला, संस्कृति आदि में द्रुत जाति से परिवर्तन पाया गया है। आज सम्पूर्ण देश में पश्चिम सभ्यता के कारण वर्तमान समय में आदिवासी समाज जिस संक्रमणकालीन स्थिति से होकर गुजर रहा है, उसका एक प्रमुख पक्ष विकास की समस्या है। आजादी प्राप्ति के बाद जनजातियों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए, शिक्षा स्वास्थ्य, राजनैतिक जगरूकता, आर्थिक सुधार हेतु अनेक प्रयास किये गये हैं। इन नियोजित प्रयास के अतिरिक्त परिवर्तन की नवीन शक्तियाँ जनजातीय समाज की संस्कृति, सामाजिक परम्परा, रीति–रिवाज आदि को द्रुतगति प्रभावित कर रही है, जनजातियों में समाजिक परिवर्तन, विकास की मुख्य धारा ने इनके सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन तीव्र हुई है। यद्यपि पूर्व से ही कोल जनजाति दीर्घ अवधि तक बाह्य सम्पर्क से वंचित रहे हैं, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समीपस्थ सभ्यता और संस्कृति, पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आने से उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में काफी परिवर्तन आयी है। देश में संचार के साधनों का विकास, इलेक्ट्रानिक मीडिया का विकास, प्रचार–प्रसार, यातायात के साधनों का विस्तार, शिक्षा–स्वास्थ्य, जैसी कल्याणकारी योजनाओं के प्रभाव के कारण आधुनिक सामाजिक एवं संस्कृतिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। अतः जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन की स्थिति की विस्तृत विश्लेषण हेतु रीवा जिले की कोल जनजाति को चुना गया है। क्योंकि जिले के कोल जनजाति में सृजनात्मक

परिवर्तन, परिस्थिति की व्यवस्था में परिवर्तन, खान–पान रहन–सहन, रीति–रिवाज, बोली–भाषा, आदि में बदलाव पाया गया है। जनजातियों का जीवन निर्वाह सदियों से संघर्षपूर्ण रहा है। इनकी दिनचर्या, रहन–सहन, वेशभूषा, खान–पान की प्रवृत्ति, भोजन पकाने की पद्धति, नमी युक्त आवास, घरो के आस–पास साफ–सफाई की कमी तथा इनकी एक–एक अलग प्रकार की सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक मान्यताएँ व अलग संस्कृतिक के अनेक रंग हैं। देश की भाति मध्यप्रदेश के रीवा जिले में कोल जनजातीय संस्कृति के अलग–अलग स्वरूप हैं। जनजाति समाज की महिलाएँ, बच्चे, युवा, युवातियों, बूढ़े आदि परम्परागत कृषि एवं प्राथमिक व्यवसाय में संलग्न पाये गये हैं। आज के तकनीकी युग में भी जिले की जनजातियाँ असिंचित कृषि पद्धति को जीवन्त बनाये हुए हैं, रीवा जिले की विभिन्न तहसीलों जैसे जवा, त्योंथर, सिरमौर, सेमरिया, मऊगंज, हनुमना, आदि के अनेक ग्रामों में कोल जनजातियों द्वारा परम्परागत तरीके से अपने कृषि व्यवसाय अन्तर्गत मोटे अनाजों की फसले उगाई जाती है, परम्परागत खेती में प्रमुख रूप से ज्वार, मक्का, कोदौ, कुटकी, लोकडा, चना, मसूर, उड़द, मूँग, अलसी, तुअर आदि की फसलें उगार अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यह लोग अपनी कृषि पद्धति में हल–बैल का उपयोग करते हैं, फसल उगाने में परम्परागत जैविक खाद, गोबर, कूड़ा–करकट, पेड़ों के पत्ते एवं घास जलाकर खेतों को उपजाऊ बनाते है।

ये लोग हिन्दू धर्म ग्रन्थों में वर्णित 16 प्रकार के संस्कार के प्रति भी आस्था व विश्वास का पालन करते हैं। इनके प्रमुख संस्कार आज भी बड़ी दिलचस्पी के साथ सम्पन्न कराये जाते है। संस्कार सम्पन्न कराने में ब्राह्मण, पण्डित या पुराहित को बुलाकर यज्ञ, कथा, शादी–विवाह, कर्म–काण्ड आदि का आयोजन बड़ी उत्सुकता से करवाते हैं। जनजातियों के जीवन चक्र के प्रमुख संस्कार जैसे–जन्मोत्सव (बरहों) संस्कार, कर्णवेध संस्कार, चूड़ा कर्म, मुंडन संस्कार, अन्न प्रासन संस्कार, नामकरण, दाहसंस्कार, आस्थि विसर्जन, दशगात्र, एकादशाह, त्रयोदशाह एवं पित्र मोक्ष आदि को मानने पर विश्वास रखते हैं। कोल विवाह संस्कार हिन्दू धर्म के रीति–रिवाज के अनुरूप संपन्न कराते हैं, इनका अपना वंशानुगत गोत्र होता है, सगोमी विवाह पर प्रतिवध रखते है, कोल के अतिरिक्त यह की जनजातियों के प्रमुख गोत्र में मरावी, मरकाम, कुशराम, धुर्वे टेकाम, पनाडिया, श्यामले, टाण्डिया, नेताम आदि प्रमुख हैं। ये लोग लड़के–लड़कियों की शादी एक ही गोत्र में नही करते हैं, इनके समाज में सगोत्रीय विवाह की परम्परा नहीं है, सगोत्री विवाह दोषपूर्ण मानते हैं। यहाँ की जनजाति समुदाय मे सामान्य रूप से एक विवाह की प्रथा है। परन्तु कुछ जनजाति समुदाय के लोग एक से अधिक विवाह करते हैं, परन्तु समाज में ऐसे लोगों को अच्छा नही माना जाता है। एक से अधिक पत्नी रखने का प्रमुख कारण है पहली पत्नी का बाँझ होना या धन सम्पत्ति और सम्पन्नता का प्रदर्शन इत्यादि अनेक कारण हो सकते हैं। जनजातीय अन्तर्विवाह का इनके समाज में प्रचलन है, देवर विवाह, विधवा विवाह, पुनर्विवाह, शाली विवाह प्रचलित है, इनके समाज में दूर के रिश्ते के भाई–बहन में विवाह वर्धित है, साथ ही विधवा विवाह और विवाह विच्छेद का भी प्रचलन है, यह की जनजातियाँ प्रायः अपना परिचय उपजाति के रूप में देते हैं किन्तु जिले के सभी विकासखण्डों में कोल जनजाति का वितरण प्रमुख रूप से पाया जाता है।

जनजातियाँ वह मानव समुदाय हैं जो एक अलग निश्चित भू–भाग में निवास करती हैं और जिनकी एक अलग संस्कृति, अलग रीति–रिवाज, अलग भाषा होती है तथा ये केवल अपने ही समुदाय में विवाह करती हैं। सरल अर्थों में कहें तो जनजातियों का अपना एक वंशज, पूर्वज तथा सामान्य से देवी–देवता होते हैं। ये अमूमन प्रकृति पूजक होते हैं। भारतीय संविधान में जहाँ इन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है तो दूसरी ओर, इन्हें अन्य कई नामों से भी जाना जाता है मसलन– आदिवासी, आदिम–जाति, वनवासी, प्रागैतिहासिक, असभ्य जाति, असाक्षर, निरक्षर तथा कबीलाई समूह इत्यादि। हालाँकि भारतीय जनजातियों का मूल स्रोत कभी देश के संपूर्ण भू–भाग पर फैली प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड तथा मंगोल जैसी प्रजातियों को माना जाता है। इनका एक अन्य स्रोत नेग्रिटो प्रजाति भी है जिसके वंशज अण्डमान–निकोबार द्वीपसमूह में अभी भी मौजूद हैं। गौरतलब है कि अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति की पहचान है और इसी के मूल में निश्चित रूप से भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थित जनजातियाँ हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में रहते हुए अपनी संस्कृति के ज़रिये भारतीय संस्कृति को एक अनोखी पहचान देती हैं।

विश्लेषण –

रीवा जिले की कोल जनजाति की संस्कृति परम्परागत संस्कृति को छोड़कर पश्चिमी संस्कृति को तेजी से अपना रहे हैं, सदियों से चली आ रही संस्कृति को छोड़ रहे हैं। यद्यपि जनजातियों की भौतिक संस्कृति, अपनी भौगोलिक पार्थक्य के कारण अपनी पहचान बनाये रह सकी है। मानव विज्ञान के प्रमुख सिद्धान्त भी जनजातीय संस्कृति के अध्ययन पर आधारित है। यद्यपि भारतीय समाज में विभिन्न संस्कृतियों का अदभुत समागम भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण एवं अनोखी विशेषता है। यहाँ पर धर्म संस्कृति का प्राण माना जाता है, बाह्य रूप से विभिन्न भौतिक संस्कृतियाँ हमेशा एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। अतः जनजातियों की भौतिक संस्कृति अभी तक परम्परा और रूढ़ियों द्वारा संचालित संस्कार को पालती आयी है। हमारे समाज में जनजातियों की संस्कृति सर्वप्रथम भौगोलिक, प्रजातीय, और भाषाई विशेषताओं के माध्यम से अपनी एक विशेष पहचान प्रदर्शित करती है। जनजातियों की भौतिक संस्कृति, सामाजिक मर्यादा और जीवनयापन की शैली एक विशेष प्रकार की पद्धति है, इनके रीति–रिवाज, रहन–सहन तथा आचार–विचार विशेष प्रकार की सामाजिक मान्यताएँ, धार्मिक परम्परा, भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। भारतीय संस्कृति के विकास में जनजातियों की भौतिक संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः जनजातियों की भौतिक संस्कृति का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट है –

परम्परा, आस्था और संस्कृति – भौतिक जीवन में जनजातियाँ आदिम परम्पराओं में निहित जीवन मूल्यों के प्रति आस्थावान रही हैं। आदिवासी अपनी सुख–दुःख, राग–विराग और भक्तिमूलक भावनाओं को विभिन्न कलारूपों में अभिव्यक्त करते हैं। उनकी प्रत्येक गतिविधि स्वाभाविक जीवनचर्या का अंग होती है, जो सरकारों से प्राप्त है। आदिवासी गायक राग–रागनियों का ज्ञाता न होते हुए भी उसकी लय ताल अनुशासित और व्यवस्थित होती है। वह नृत्य या चित्रकला का औपचारिक प्रशिक्षण नहीं होते फिर भी समूह में सीखता है। इनकी प्रत्येक कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है।

जनजातियों में धार्मिक विश्वास की परम्परा – जनजातियाँ सर्वशक्तिमान की सदृश्य सत्ता पर विश्वास करती है, उनकी व्यवस्था को सहज भाव से स्वीकार करती है। आदिवासी सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक सजीव और निर्जीव में उस अलौकिक शक्ति का अनुभव करते हैं और उसके प्रति नतमस्तक होते हैं। यही आस्था उनके अनुष्ठानों की प्रेरणा भूमि है। जनजातियाँ प्रकृति के संसर्ग में रहती हैं। पेड़–पौधे, नदी, पर्वत, पशु, पक्षी, सर्प, केकड़े सब उनकी आस्था के दायरे में हैं। आदिवासी अपनी उत्पत्ति को किसी न किसी पेड़, पौधे अथवा जीव–जंतु से जोड़ते हैं। प्रत्येक जनजाति के अनेक गोत्र हैं और हर गोत्र का अपना गोत्र देवता। यह गोत्र देवता प्रकृति का ही कोई अंग होता है। इसलिए आदिवासी अपने अपने ग्राम देवता को पूज्य मानते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार से पेड़, पौधे और पशु, पक्षी संरक्षित रहते हैं। प्राचीनकाल से ही यह आस्था पर्यावरण के संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

जनजातियों में देवी देवता को पूजने की परम्परा – महादेव शिव जनजातियों की आस्था के केन्द्र बिन्दु हैं। बड़ादेव की अब धारणा उसी आस्था की अभिव्यक्ति है। गोड़ों के लिगो देव, भीलों के बाबदेव, कोरकुओं के महादेव, बैगाओं के बूढ़ादेव तथा भारिया और सहरिया के दूल्हादेव आदि 'बड़ादेव' के ही रूप माने जाते हैं। प्रत्येक जनजाति का अपना–अपना देवकुल है, जो इस प्रकार है –

गोड़ – बड़ादेव, ठाकुरदेव, बूढ़ादेव, बूढ़ीमाई, कंकालिनमाई, घमसेनदेव, नारायणदेव, खेरमाई, रातमाई आदि। इनकी चण्डी पूजा प्रसिद्ध है।

भील – बालदेव, वगासादेव, भिलटदेव, कसूमरदेव, बेलूनदेव, खालुनादेव, बाघदेव, चामुण्डा, सावन माता, सात माता, तेजाजी आदि। ये होली के दिन 'गलबाबा' का अनुष्ठान करते हैं। इनका विश्वास है कि गलबाबा रोगों को गला देते हैं। गोड़, कोल, कोरकू जनजाति के लोग अधिकतर महादेव, मुठवादेव दूल्हादेव, बाघदेव, जोगनी,

काढत्तरबाबा, हरदुललाला, भैसासुर आदि की पूजा करते हैं। दक्षिणी पठार की जनजाति के लोक रावण ओर मेघनाथ की पूजा करते हैं।

गोड़—बैगा — बूढ़ादेव, ठाकुरदेव, घनश्याम देव, नारायण देव, भीमसेन, बाघदेव, दूल्हादेव, खैरमाई, रातमाई, बूढ़ीमाई, ठकुराइनमाई, धरतीमाता आदि।

भारिया — हरदुललाला, मठुआदेव, घुरलापाठ, बाघदानों, भीमसेन, भैसासुर, जोगनी, खेडराई, चण्डीमाई आदि।

सहरिया — भेरू, भूमियादेव, परीतबाबा, ठाकुरबाबा, नाहरदेव, कारसदेव, नरसिंहदेव, तेजाजी आदि। ये बीजासन देवी, कैलामाता और कंकाली माता की भी पूजा करते हैं। अन्य जनजातियों के भी अलग—अलग अथवा इन्हीं नामों से कुल देवता, ग्राम देवता और गोत्र देवता हैं। सूर्य और चन्द्रमा इनकी आस्था के केन्द्र में हैं। अतः उनकी पूजा अनिवार्यतः की जाती है। भीलों में सूर्य पूजा जन्म—संस्कारों में एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है।

गाता — गोड़, भील एवं कोरकू जनजातियाँ मृतकों की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए 'गाता' या 'गातला' की स्थापना अनुष्ठानपूर्वक करती हैं। विशेष अवसरों पर 'गाता' की पूजा अर्चना की जाती है। एक परिवार के मृतकों की गाताएं प्रायः एक ही स्थान पर स्थापित की जाती है। गाता पत्थर अथवा लकड़ी की होती है। भील गाता में घोड़े पर सवार पुरूष, जिसके दाएं, बाएं सूर्य और चन्द्रमा तथा नीचे पत्नी के प्रतीकात्मक चित्र अंकित अथवा उत्कीर्ण होते हैं। गोढ़ और कोरकू काष्ठ स्तंभ पर प्रकृति चित्रण करते हैं।

पर्व—त्यौहार — पर्व—त्यौहार संस्कृति के संवाहक और पोषक हैं। जनजातियों के पर्व—त्यौहारों से उनकी परम्पराओं तथा सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों का पता चलता है। गोड़ों के पारंपरिक त्योहारों, विदर्भ पूजा, बकबंदी, हरदिली, नवाखानी, जवारी, मड़ई आदि प्रमुख हैं। भीलगल, गट्ठ नवई, चलावली, जातरा आदि परम्परागत त्यौहार मनाते हैं। भीलों का भगोरिया पर्व प्रसिद्ध है। होली के पहले जो विशेष साप्ताहिक हाट लगता है उसे भगोरिया हाट कहते हैं। इस घर के पहले दो साप्ताहिक हाट भी भरते हैं जिन्हें गुलालिया और त्योहारिया कहते हैं। ये हाट भगोरिया पर्व की तैयारी का हिस्सा होते हैं। फाल्गुन के साथ—साथ भीलांचल में उल्लास का वातावरण उतर आता है। ढोल—मादल और थाली की थाप तथा बांसुरी की स्वर लहरियों के साथ सजी—धजी युवक—युवतियों की टोलियां भगोरिया हाट की ओर चल पड़ती है। वहाँ खूब नृत्य गान होता है।

कोरकू वर्ष भर त्यौहार मनाते हैं। ये अमावस्या को पवित्र मानते हैं और पड़ावा या दूज को त्योहार मानते हैं। ये ज्येष्ठ में डोडवली, सावन में गिरोती, नागपंचमी और रक्षाबंधन, भादो में पोला, क्वार में देव, दशहरा, कार्तिक में दीवाली, माघ में दशहरा तथा फाल्गुन में होली आदि त्योहार प्रमुख रूप से मनाते हैं। हरेला, गेला, नवाखानी, दशहरा, काली चौदस, दीवाली, करमाया, पूजा आदि बैगा जनजाति के मुख्य त्योहार हैं। भारिया विदरी, नवाखानी, जवारा, दीवाली और होली मनाते हैं। विदरी में बीज की पूजा की जाती है, बादलों की अगवानी के साथ। नवाखानी में नया फसल का तथा जवारा नवरात्रि का पर्व है। दीवाली में पशुधन के साथ 'खिरका' खेलने और होली में मेघनाथ का पर्व मनाने की परम्परा भारियाओं में हैं। सहरिया सारे हिन्दू पर्व—त्योहार मनाते हैं। अन्य जनजातियाँ भी पारंपरिक त्योहारों के साथ—साथ हिन्दू पर्व—त्यौहार उत्साह के साथ मनाती हैं।

नृत्य संगीत — आदिवासी संसार में नृत्य और संगीत उनकी अनूठी किंतु सहज जीवन शैली के अभिन्न अंग हैं। करमा, शैला, भड़ौनी, विरहा, कहरबा तथा सुआ आदि गोड़ों के नृत्य है। 'करमा' इनका प्रिय नृत्य हैं। गोड़ों के सजनी गीत—नृत्य की भाव मुद्राएं मुग्ध करने वाली होती है। उनका दीवाली नृत्य भी अनूठा होता है। मादल, रिमकी, सिगबाजा, नगाड़ा, मजीरा, गुदुम, खडताल, ठिसकी, चुटकोला, झांझ, बांसुरी, अलगोजा, शहनाई, तमूरा, चिकारा और किंदरी बाना आदि पारस्परिक वाद्य मन में उत्साह का संचार करते हैं।

कोरकू जनजाति के नृत्य प्रायः पर्वों के प्रसंग तथा मिथको पर आधारित होते हैं। चैत्र में देव दशहरा, चाचरी एवं गोगल्या नृत्य, वैशाख में थापरी नृत्य, ज्येष्ठ में दांदल और डोडवली, श्रावण में डंडानाच, क्वार में

हीरोरया एवं चिल्लुड़ी कार्तिक की पड़वा पर ठाट्या तथा वैवाहिक अवसरों पर स्त्रियों का गादली नृत्य लोकप्रिय है। कोनकू नृत्य के लिए ढोल, ढोलक, मृदंग, टिमकी, डफ, अलगोजा, बासुरी, भूगडु, पवई, चिटकोरा और झांझ आदि पारम्परिक वाद्यों का प्रयोग करते हैं।

भारिया लोग भडम, खैतम और करमशैला नृत्य में अधिक रूचि लेते हैं। वे नृत्य के समय ढोल, टिमकी, झांझ, ढोलक व बासुंरी आदि वाद्यों का प्रयोग करते हैं। भारिया स्त्रियाँ मंजीरा और चिटकुला बजाकर अपना उल्लास व्यक्त करती हैं। लाहरी, डागसोलो, चाली, चंजावणी, दौडावणी और घोड़ी भीलों के प्रिय नृत्य रूप हैं। ढोल, मादक, कुण्डी, कासे की थाली, वाहजी (बासुरी) के अलावा चपटे मुंह वाला अज गुंजा तथा बांस की चिपलियों से बना केन्द्ररिया भीलों के मन पसन्द वाद्य हैं।

बैगा नृत्य के समय पारंपरिक वस्त्रों और आभूषणों से सजे होते हैं। झरपट, दशेहरा, और विलमा नृत्य भी इन्हें अच्छे लगते हैं। मादल इनका प्रमुख वाद्य है। दशेहरा में ढोल तथा अन्य नृत्यों में नगाड़े का उपयोग भी किया जाता है। घेरता नृत्य नाटिका (स्वांग) में बैगा मुखौटों का सुन्दर प्रयोग करते हैं। अन्य जनजातियों में भी नृत्य–संगीत की समृद्ध परम्परा है।

शिल्पकलाएँ – अधिकांशतयः अध्ययन से ज्ञातव्य है कि सम्पूर्ण मध्यप्रदेश की जनजातियाँ स्वभावतः कलाप्रिय हैं। दीवारों को लीप पोतकर उन्हें चित्रांकित करना सभी आदिवासी महिलाओं को भाता है। गोड़ महिलाएँ दीवारों पर त्रिभुजाकार तथा वृत्ताकार मिट्टी की रेखाएं उभार कर उन्हें सजाने में वे दक्ष होती है। मिथकों पर आधारित प्रयोगों के साथ कैनवास और कागज पर उतार कर इस चित्रावली को लोकप्रिय करने में पासगढ़ के परधान (जनजाति) कलाकार स्व. श्री जनगण सिंह, श्याम का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गोड़ ताको, खूटियों और अनाज कोठियों को भी चित्रांकित करते हैं। वे इस कला को चीन्हा कहते हैं। रस्सी, मचिया, सुतली, कृषि के औजार खुमरी, फंदे व धनुष बाण गोड़ स्वयं अपने ढंग से तैयार करते हैं। मध्यप्रदेश की भारिया बांस और छिन्द के पत्तों की कलात्मक सामग्री बनाने, दरवाजों पर चित्र उकारने, पेड़ों की छालों से रस्सी बनाने की कला में भारिया निपुण होते हैं। पीली मिट्‌टी, छुई या चूने से पुती दीवारों पर ये सुन्दर चित्रकारी करते हैं। आंगन माडवों से अलंकृत होते हैं।

पश्चिमी मध्यप्रदेश की भील भी आंगन में कल्पनाएं रचते हैं। इनके भित्ति चित्र विशिष्ट होते हैं। पिठौरा में प्रकृति और देवी–देवताओं का प्रतीकात्मक अंकन होता है। कोरकू भी दीवारों को चित्रित करते हैं। प्रवेश द्वार पर विशेष अंकन होता है, जिसे गुदनी कहते हैं। गुदनी खड़िया या हिरमची (लाल मिट्‌टी) से बनायी जाती है। अठनी गुदनी के अंकन में दक्ष होती है। गुदनी मांगलिक प्रतीक मानी जाती है। बैगा जनजाति में गुदने का प्रचलन अधिक है। प्रदेश की अन्य जनजातियों में भी शिल्प कलाओं के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

जनजातियों की वाचिक सम्पदा के प्रति अत्यन्त प्राचीन काल से परम्परागत मान्यताएँ और विश्वास रहा है। जनजातियों की वाचिक (मौखिक) सम्पदा अत्यन्त समृद्ध रही है। जीवन के प्रारम्भ से अब तक मनुष्य ने जो कुछ अनुभव और चिंतन किया है वह बौद्धिक सम्पदा के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहा है। यह वाचिक परम्परा अब भी जनजातियों की शक्ति है। विभिन्न प्रसंगों के गीत कथाएं, गाथाएं, कहावतें, पहेलियां, मुहावरे, मंत्र स्वांग और औषधीय ज्ञान जनजातियों की बौद्धिक पहचान है। उनमें आशु कवित्व की विलक्षण प्रतिभा होती है। यह मौखिक सम्पदा आदिवासी बोलियों की समृद्धि एवं अभिव्यक्ति क्षमता का प्रतीक भी है। इनकी वाचिक सम्पदा में इतिहास और परम्परा के महत्वपूर्ण सूत्र खोजे जा सकते हैं। जनजातीय संस्कृत समृद्ध भारतीय संस्कृत का अभिन्न अंग है। इसके माध्यम से हम सम्पूर्ण सांस्कृतिक यात्रा का अवलोकन और आंकलन कर सकते हैं।

देश एवं प्रदेश में निवासरत विभिन्न अनुसूचित जनजातियों की भांति रीवा जिले के विभिन्न विकासखण्डों के अंतर्गत अनेक जनजातीय बाहुल्य ग्रामों में पायी जाने वाली कोल जनजातियों की दैनिक जीवनयापन, सामाजिक, आर्थिक मामले में अनेक भौतिक वस्तुओं का उपयोग करते आ रहे हैं, इनकी भौतिक वस्तुओं का उपयोग करते आ रहे हैं, इनकी भौतिक संस्कृति बाहरी जीवन में अनेक भौतिक वस्तुओं, उपकरणों, प्रसाधनों का उपयोग करते हैं। जीवन निर्वाह में प्रयुक्त होने वाले कृषि उपकरण, वाद्य यंत्र जैसे ढोल, नगाड़े, गुदुम, मादर, नगरिया, आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग अपने गीत संगीत त्यौहार एवं उत्सव, विशेष पर्व में करते हैं। जनजातियों की कला एवं संगीत जो एक निश्चित ताल एवं लय के साथ प्रस्तुत करते हैं। नृत्य, गीत, भगत बघेली गीत,

वैवाहिक अवसरों पर विशेष प्रकार के नृत्य कला एवं गीत संगीत की प्रस्तुति परम्परागत तरीके से करते हैं। जिले की कोल, मांझी एवं बैगा जनजाति द्वारा बाजे–गाजे के साथ नृत्य, भगत नृत्य, प्रचलित है। देवीगीत नृत्य और होली गीत का सर्वाधिक प्रचलन है। जिले के जवा त्योंथर विकासखण्ड अंतर्गत अनेक जनजाति बाहुल्य ग्राम जैसे छतैनी, हरदोली, कोहया, लूक, भनिगवां, बड़ाछ, छतैनी, खंझा आदि ग्रामो में क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान ज्ञात है। इन ग्रामों की जनजातियाँ परम्परागत वाद्य यंत्रों के साथ एवं परम्परागत वेशभूषा, गणवेश के साथ सैला नृत्य कर्मा गीत गाते हुए प्रस्तुत करने की प्रथा है। यहाँ की जनजातियों के गीत का भाव अपने क्षेत्र गाँव, समाज की समस्याओं एवं प्राकृतिक एवं भौतिक संस्कृति के अनुरूप ज्ञात हुआ है।

कोल जनजाति के देवी नृत्य और होली नृत्य के साथ गीत के शब्दों में देश, प्रदेश के, समाज सुधारकों, राजनेताओं, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों, अमरशहीद, राजतंत्र के राजा महाराजाओं का वर्णन शामिल पाया गया है। कुछ ग्रामों जैसे उत्तरप्रदेश राज्य की सीमावर्ती ग्राम कोल्हुआ, पुरौ, बालूक आदि ग्रामों के अन्तर्गत निवासरत पायी जाने वाली कोल जनजातियों में कोलवर्षा गीत बाजे गाजे के साथ बड़ी उत्सकुता के साथ अपनी कला एवं भौतिक संस्कृति का प्रदर्शन करने की उनमें परम्परा है। यद्यपि सम्पूर्ण रीवा जिले के सभी 09 विकासखण्डों में अनुसूचित जनजातियों का वितरण पाया गया है किन्तु जिले के जवा, त्योंथर एवं हनुमना विकासखण्ड में अनुसूचित जनजातियों की अधिकता है। शिक्षा एवं संचार के साधनों का विस्तार, अन्य विकासखण्ड जैसे विकासखण्ड रीवा और विकासखण्ड सिरमौर, विकासखण्ड रायपुर कर्चुलियान, गंगेव की तुलना में पिछड़े हुए गाँव क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान लिये गये साक्षात्कार एवं अवलोकन से ज्ञात हुए हैं।

इस जिले की कोल जनजातियों के दैनिक जीवन एवं कृषि कार्य में प्रयुक्त यंत्र, हलों में लोहे का फाल, कुदाली, कुरपी, फावड़ा तथा खेती में मोटे अनाज भी उगाते हैं। कृषि कार्य में बैलों का उपयोग, हलचलों फसल की गहाई में करते हैं तथा घरों में स्थानीय स्तर पर वनों से उपलब्ध वनसामग्री लकड़ी काठ व अन्य साधनों का उपयोग करते हैं।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः यहाँ की अनुसूचित जनजातियों के जीवन में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन दिनोंदिन आ रही है, इनको भौतिक संस्कृति में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रही है, जिसका प्रमुख कारण शिक्षा में सुधार, संचार सुविधाओं, नगरीकरण और पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव परिलक्षित होता है। जिले के सभी 09 विकासखण्डों के क्षेत्रीय अध्ययन में कुल 30 जनजाति बाहुल्य ग्रामों के 300 जनजाति परिवारों से लिये गये साक्षात्कार एवं अवलोकन से स्पष्ट हुआ है कि जनजातियों में क्षैतिज एवं उदग उक्त दोनों प्रकार की परिवर्तन आयी है।

संदर्भ –

1. खर्कवाल, एम.सी. एवं पुरोहित, के.सी. – सांस्कृतिक भूगोल, नूतन पब्लिकेशन, कोटद्वार, उत्तरप्रदेश, संस्करण 1991.
2. मिश्रा, बी.एल. – कोल जनजाति सामाजिक, आर्थिक सर्वेक्षण, शोध प्रबंध, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, वर्ष 1951 ।
3. विजय कृष्ण – भारत की जनजातियाँ तथा संस्थायें, लखनपाल एण्ड कम्पनी, देहरादून, संस्करण 1960 ।
4. पर्यावरण एवं जनजातियाँ – अस्तित्व के लिये समीकरण, शोध पत्रिका, शासकीय महाविद्यालय, अम्बिकापुर, वर्ष 1995 ।
5. शंकर कमला – रीवा संभाग के आदिवासी क्षेत्रों का भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबंध, अ. प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, वर्ष 1988।